Research Guru
Online Journal of Multidisciplinary Subjects (ISSN : 2349-266X)
Volume-13, Issue-4, March-2020
www.researchguru.net

भारतीय समाज व संस्कृति में स्त्री जीवन

रजनी पाण्डेय
शोधकर्ता, मेवाड़ विश्वविद्यालय

डॉ.सुशीला लड्डा
मेवाड़ विश्वविद्यालय

डॉ.सुनील तिवारी
दिल्ली विश्वविद्यालय

सारः
वैदिक काल से लेकर उपनिषद काल, रामायण व महाभारत काल से लेकर बौद्ध जैन काल तथा हिंदी साहित्य के आदिकाल से लेकर आधुनिक काल तक अनेक रूपों में संस्कृति व साहित्य की एक अक्षुण्ण परंपरा प्रवाहमान होती गई जो उस समय व समाज को प्रतिबिंबित करती हैं जिसमें स्त्री अपने नए-नए आयामों के साथ प्रस्तुत होती आई है।
प्राचीन काल में नारी प्रतिष्ठित पद पर विराजमान थी। ऋग्वैदिककालीन समाज में स्त्रियों को यथोचित स्थान मिला था। उनसे किसी प्रकार का भेदभाव नहीं किया गया। उसे आयु व इच्छा के अनुरूप सर्वोच्च शिक्षा ग्रहण करने के अवसर दिए गए थे परंतु ऋग्वेद में मिलने वाले कुछ साक्ष्य स्त्री के तथाकथित सम्मानजनक स्थिति पर प्रश्नचिन्ह लगाते हैं। नियोग प्रथा तथा बहुपति विवाह, सामाजिक कुरीति के रूप में दिखाई देते हैं। संपत्ति का अधिकार तो प्राचीन काल से ही पुरुष वर्ग ने अपने पास रखा, स्त्री को इस अधिकार से वंचित ही रखा गया। स्त्री का कार्य परिवार को पोषित करना तथा पुरुष कार्य में सहयोग देना था।
उत्तरवैदिक कालीन समाज में स्त्री की स्थिति समाज की मुख्यधारा से हटकर हाशिए पर आ गई। उच्च वर्ग की स्त्रियों के लिए शिक्षा का प्रबंध था। विशेषतः स्त्रियों को नृत्य व संगीत में प्रवीण होने की शिक्षा दी जाती थी। सती प्रथा, पर्दा प्रथा जैसी बुराइयों का जन्म मध्यकाल में हुआ। इस्लाम के भारत में आने के बाद असुरक्षा, बाल विवाह, पर्दाप्रथा, दहेज, अनमेल विवाह आदि प्रश्नों ने कन्या जन्म को सामाजिक प्रतिष्ठा का प्रश्न बना दिया, जिससे कन्या शिशु हत्या का चलन बढ़ा। मध्यकालीन काव्य में मीरा को छोड़कर अन्य भक्त, संत कवियों ने नारी की सार्थकता पुरुष वर्चस्ववादी ढांचे में सुरक्षित की है। भक्त कवियों ने नारी सौंदर्य की उदात्तता उसके तीनों रूपों माता, पत्नी, कन्या में की है। भक्ति काल में जहां स्त्री को एक माता, पुत्री, पत्नी के आदर्श रूप में सम्मान मिला, वहीं रीतिकाल का दौर आते ही स्त्री पुनः एक भोग विलास की वस्तु के रूप में देखी जाने लगी। साहित्यकारों के काव्य की विषयवस्तु नायिका भेद, नखशिख वर्णन, श्रृंगार आदि रहे।
आधुनिक कवियों ने समाज में उपेक्षित नारी की स्थिति के प्रति संवेदनशील होकर उसे अपने काव्य में महत्वपूर्ण स्थान दिया है। चाहे काव्य की नारी हो या कथाकार की नारी, वह तर्क, बुद्धि, आधुनिक विचारों से संपन्न है। कुछ महिला कथाकारों ने नारी को एक स्वतंत्र अभिव्यक्ति दी है जो अपने वजूद, अपनी शक्ति, अपने नए विचारों के साथ इस पुरुष वर्चस्ववादी समाज में अपनी स्थिति को हाशिए से निकाल कर मुख्यधारा से जोड़ने को प्रयासरत है।

की-वडर्स:
वैदिककाल, इस्लामी आक्रमण, देवदासी प्रथा, स्त्री मुक्ति , स्त्री अस्मिता।

परिचय:
ऐतिहासिक परंपरा में भारतीय समाज व संस्कृति का एक विशिष्ट व गौरवपूर्ण स्थान है। प्राचीन काल के लिखित साहित्य हमारी संस्कृति व समाज के परिचायक रूप में माने जाते हैं। भारत में सर्वप्रथम लिखे जाने वाले ग्रंथों के रूप में वेद, तदनंतर उपनिषदों, ब्राह्मण ग्रंथ, आरण्यक एवं वेदों की रचना की गई। वैदिक काल से लेकर उपनिषद काल, रामायण व महाभारत काल से लेकर बौद्ध जैन काल तथा हिंदी साहित्य के आदिकाल से लेकर आधुनिक काल तक अनेक रूपों में संस्कृति व साहित्य की एक अक्षुण्ण परंपरा प्रवाहमान होती गई जो उस समय व समाज को प्रतिबिंबित करती हैं जिसमें पल-पल बदलती समाज की आधी आबादी की छवि अपने नए-नए आयामों के साथ प्रस्तुत होती आई है। मनुस्मृति में कहा गया है-

'यत्र नार्यस्तु पूज्यंते रमंते तत्र देवता:।
यत्रैतास्तु न पूज्यन्ते सर्वास्तत्रफला: क्रिया:'।। [1]

उक्त सूत्र वैदिक समाज में नारी के महत्व को ही नहीं बल्कि उसकी स्थिति को भी उजागर करता है कि उस काल में स्त्री को देवस्वरूपा बताकर उसे श्रेष्ठ तथा सम्मान की अधिकारिणी बताया गया है। उपनिषदों में भी कहा गया है- 'सृष्टि की संपूर्ण रिक्तता की पूर्ति स्त्री से ही मानी जाती है'। [2]
वास्तव में गृहस्थाश्रम की सफलता नारी पर ही आधारित है। इसलिए प्राचीन काल में नारी प्रतिष्ठित पद पर विराजमान थी। मानव जीवन के सर्वतोन्मुखी विकास में नारी की अहम भूमिका रही है। शतपथ ब्राह्मण में नारी को अर्द्धांगिनी कहा गया है। परंतु पौराणिक काल (महाभारत व रामायण युग) में नारी के अधिकार पहले जैसे नहीं रहे। तप, त्याग, नम्रता, धैर्य आदि पतिव्रत धर्म का पालन करना स्त्री के गार्हस्थ्य जीवन का अनिवार्य लक्ष्य माना जाने लगा। पत्नी पर पति के मनमाने अधिकार का ज्वलंत उदाहरण द्रौपदी व सीता बनी। बौद्ध व जैन काल में भी सिद्धार्थ की परित्यक्ता पत्नी यशोधरा व महावीर स्वामी की पत्नी यशोदा की विरह पीड़ा के दु:ख से हिंदी साहित्य भी अछूता नहीं है।

भारतीय सभ्यता व संस्कृति के प्रारंभिक काल में स्त्रियों की स्थिति बहुत सुदृढ़ थी। ऋग्वैदिककालीन समाज में स्त्रियों को यथोचित स्थान मिला था। उनसे किसी प्रकार का भेदभाव नहीं किया गया। पुरुषों की भांति स्त्रियों को भी शिक्षा पाने के लिए उपनयन संस्कार का अधिकार था। उन्हें अपनी आयु व इच्छा

[1] मनुस्मृति, पृष्ठ संख्या 56

[2] बृहदारण्यक उपनिषद 1/4/ 17

के अनुरूप सर्वोच्च शिक्षा ग्रहण करने के अवसर दिए गए थे। सद्दोधवधू,अमाजू, ब्रह्मवादिनी आदि नामों से जाने जानेवाली कन्या अपनी आयु के अनुसार शिक्षा ग्रहण करनेवाली विभिन्न अवस्थाओं की सूचक है। स्त्रियों को सभाओं, समितियों में भाग लेने का अधिकार प्राप्त था। वे यज्ञों में शामिल होती तथा वेद मंत्रों का आह्वान करती थी। वेदों में अनेक स्थलों पर रोमाला, सिकता, घोषा, लोपामुद्रा, अपाला, विश्वपाला आदि विदुषी स्त्रियों के नाम प्राप्त होते हैं परंतु ऋग्वेद में मिलने वाले कुछ साक्ष्य स्त्री के तथाकथित सम्मानजनक स्थिति पर प्रश्नचिन्ह लगाते हैं। नियोग प्रथा तथा बहुपति विवाह, सामाजिक कुरीति के रूप में दिखाई देते हैं। यह प्रथाएं ऐसे दोष के रूप में उभरकर आई, जिसमें स्त्री के वजूद को नकार कर उसे महज एक आवश्यकता से जोड़ दिया गया। संपत्ति का अधिकार तो प्राचीन काल से ही पुरुष वर्ग ने अपने पास रखा, स्त्री को इस अधिकार से वंचित ही रखा गया। स्त्री का कार्य परिवार को पोषित करना तथा पुरुष कार्य में सहयोग देना था।

परंतु स्त्री की स्थिति में एक आश्चर्यजनक परिवर्तन उत्तरवैदिक कालीन समाज में देखने को मिलता है, जब उसके सम्मान व प्रतिष्ठा में गैर बराबरी आई और उसकी स्थिति सोचनीय हो गई। कारण था, उसे सभा व परिषदों में भाग लेने से वंचित कर दिया गया तथा उसके उपनयन संस्कार पर प्रतिबंध लगा दिया गया। जो स्त्रियां ऋग्वैदिक काल में धर्म व समाज का प्राण थी, उन्हें श्रुति का पाठ करने के अयोग्य घोषित कर दिया गया। विवाह संस्कार के अतिरिक्त उनके समस्त संस्कार वेद मंत्रों के बिना होते थे। मैत्रायिणी संहिता में स्त्री को जुआ व सुरा के साथ बुराई के रूप में परिणित किया गया है। यह युग जैसे स्त्री अस्मिता के तलाश का युग था। 'उनके मानसिक व आत्मिक विकास के द्वारा द्वारों पर ताले लगा दिए गए। उनकी साहित्यिक उन्नति के मार्ग पर अनेकों प्रतिबंध लगा दिए गए। -स्त्री शूद्रो नाधीताम्' जैसे वाक्य रचकर उसे शूद्र की कोटि में रख दिया गया। इस प्रकार, स्त्री की स्थिति समाज की मुख्यधारा से हटकर हाशिए पर आ गई।

उच्च वर्ग की स्त्रियों के लिए शिक्षा का प्रबंध था। विशेषत: स्त्रियों को नृत्य व संगीत में प्रवीण होने की शिक्षा दी जाती थी। शतपथ ब्राह्मण में इस काल की गार्गी, मैत्रेयी, अत्रेयी नामक विदुषी नारियों के उल्लेख मिलते हैं, जिन्होंने अपने शास्त्रज्ञान व विद्या के आधार पर पुरुष वर्ग को चुनौती दी। वृहदारण्यक उपनिषद में गार्गी याज्ञवल्यक संवाद- 'अधिक बहस मत करो वरना गदा से तुम्हारा सिर फोड़ दिया जाएगा'- स्त्री पुरुष शक्ति के वर्चस्व का उदाहरण प्रस्तुत करता है।

सती प्रथा, पर्दा प्रथा जैसी बुराइयों का जन्म मध्यकाल में हुआ। मध्यकाल में कन्या जन्म को अशुभ माने जाने के संकेत मिलते हैं। ऐतरेय ब्राह्मण में पुत्री को ही समस्त दुखों का कारण बताया गया है। सदैव पुत्री को जन्म देने वाली स्त्री को धृणा की दृष्टि से देखा जाता था। पुत्र की माता बनने पर ही स्त्री को सौभाग्यशाली व सम्मान की पात्र समझा जाता था। इस्लाम के भारत में आने के बाद असुरक्षा, विवाह, दहेज आदि प्रश्नों ने कन्या जन्म को सामाजिक प्रतिष्ठा का प्रश्न बना दिया, जिससे कन्या शिशु हत्या का चलन बढ़ा। स्त्रियों की सुरक्षा व प्रतिष्ठा के प्रश्न ने कन्या शिशु हत्या के इन आंकड़ों में वृद्धि की।

हिंदी के एक प्रमुख साहित्यकार अमीर खुसरो कहते हैं- 'मैं चाहता था तुम्हारा जन्म ही नहीं होता और यदि होता भी तो एक पुत्र के रूप में। कोई भाग्य का विधान नहीं बदल सकता परंतु मेरे पिता ने एक स्त्री से जन्म लिया और मुझे भी तो एक स्त्री ने ही पैदा किया था'।

मध्यकालीन हिंदू समाज में पर्दाप्रथा का व्यापक प्रचलन इस्लामी आक्रमण के प्रभाव से हुआ। मुसलमानों की भांति हिंदुओं में भी पर्दाप्रथा पहले से कठोर हो गई। उदारवादी दृष्टिकोण रखनेवाले अमीर खुसरो, जिन्होंने 'लैला मजनू' नामक अपनी कृति में इस प्रथा की बुराइयों का उल्लेख किया था, स्वयं अपनी पुत्री को उन्होंने इस बात का आदेश दे रखा था कि वह अपनी पीठ दरवाजे की ओर और मुंह दीवार की तरफ करके बैठे ताकि कोई उसे देख न सके।[3]

अनमेल विवाह हिंदू-मुस्लिम दोनों समुदायों में व्यापक रूप से प्रचलित थी। आदर्श विवाह उसे माना जाता था जहां कन्या वर की उम्र के एक तिहाई भाग के उम्र की होती थी। विद्यापति ने इस प्रकार के विवाह की चर्चा करते हुए उस युवती की पीड़ा को बड़ा ही कारूणिक अभिव्यक्ति दी है-

'पिया मोर बालक, हम तरुणी रे'।[4]

मध्यकाल में दहेज, बाल विवाह, बहु विवाह, सती प्रथा, ये सब स्त्री जाति पर होने वाले अत्याचारों के साक्षी थे। राजपूताना में सती प्रथा का प्रचलन बहुत ज्यादा था। 'पद्मावत' में जायसी ने भी राजा रत्नसेन की मृत्यु के पश्चात पद्मावती, बागमती व अन्य रानियों को जौहर करते दिखाया है-

' छार उठाई लीन्ह एक मुट्ठी, दीन्ह उड़ाई पिरथमी झूठी' [5]

---

[3] एक जनश्रुति के आधार पर

[4] विद्यापति पदावली पृ.सं. 263

[5] पद्मावत, जायसी, संपादक माता प्रसाद गुप्त, पृष्ठ संख्या 503

मृगावती में कुतुबन लिखते हैं- 'राजकुँवर की मृत्यु के बाद मृगावती, रुक्मणी व रनिवास की 84 रानियों में ने जलकर मृत्यु का वरण किया। इब्नबतूता, मनूची, पलसर्ट बर्नियर टैवरनियर तथा फोस्टर सभी तात्कालिक विदेशी यात्रियों ने अपनी यात्रा-वृतांत में किसी न किसी रूप में सती प्रथा का उल्लेख किया है।

मध्यकाल में स्त्रियों की दशा में एक अन्य दोष के रूप में सदियों से चली आ रही सामाजिक रूढी थी- देवदासी प्रथा। इटालियन पर्यटक मार्को पोलो ने लिखा है-

'माता-पिता कभी-कभी अपनी अविवाहित पुत्रियों को देवताओं के मंदिरों में, जिनमें उनकी अपार श्रद्धा थी, पर्व समारोहों में नृत्य करने, गाने व सेवा के लिए भेज देते थे, जबतक कि उनका विवाह नहीं हो जाता था। इनका कर्तव्य होता था कि वहे तीर्थ मंदिर में नृत्य करे, भक्ति गीत गाए और देवताओं को प्रसन्न करें'।

धीरे-धीरे बदलते परिवेश के कारण यह प्रथा एक कुप्रथा के रूप में बदल गई और धर्म के नाम पर इन लड़कियों का अमानवीय शोषण किया जाने लगा। 17वीं शताब्दी में फ्रांसीसी पर्यटक वर्नियर के विवरण से पता चलता है कि ईश्वर के नाम पर महंतों, पंडों, पुजारियों द्वारा देवदासियों का यौन शोषण किया जाता था। मध्यकाल में वेश्याओं व गणिकाओं की संख्या में भी काफी वृद्धि हुई। पृथ्वीराज रासो में चित्रलेखा नामक वेश्या तथा विद्यापति की कीर्तिलता में जौनपुर की सुंदर वेश्याओं का वर्णन है।

साहित्य समाज से जुड़ा होता है। इसलिए समाज में होने वाली तात्कालिक घटनाओं, परिस्थितियों का बखूबी चित्रण साहित्य में देखने को मिलता है। हिंदी साहित्य के आदिकाल में नारी एक वस्तु के रूप में दिखाई देती है। नारी, भूमि को प्राप्त करने के लिए योद्धा युद्ध लड़ते थे। चाहे वह पृथ्वीराज रासो की नायिका संयोगिता हो, बिसलदेव रासो की राजमती या पद्मावत की पद्मावती।

हिंदी साहित्य के भक्तिकाल में अनेक स्त्री रचनाकारों ने अपनी लेखनी चलाकर साहित्य सृजन में अपनी उपस्थिति दर्ज कराई। दक्षिण भारत के आलवार संतो में आण्डाल नामक विदुषी महिला, जिसे दक्षिण की मीरा के नाम से जाना जाता था, प्रसिद्ध थी। रामानंद के 12 शिष्य परंपरा में सुरसुरी तथा पद्मावती नामक शिष्या भी शामिल थी, जिन्होंने उनसे दीक्षा ली। संत कवियों में बावरी साहिबा व सूफी साधकों में राबिया का नाम उल्लेखनीय है। भक्तिकाल के शीर्षस्थ कवियों के रूप में पहचान बनाने वाली मीराबाई ने कृष्ण काव्य के अंतर्गत अनेक ऐसे उत्कृष्टतम काव्य रचे हैं जो आज भी साहित्य की एक अनुपम निधि है। लोकभाषा में मीरा के भक्तिगीत आज भी जन-जन की वाणी में सुनाई देते हैं।

हिंदी साहित्य में नारी अस्मिता की पहली आवाज मीरा के काव्य में सुनाई पड़ती है। मीराबाई के काव्य में सामंती समाज और संस्कृति की जकड़न से बेचैन स्त्री स्वर मुखर अभिव्यक्ति हुई है। उनकी स्वतंत्रता की आकांक्षा जितनी आध्यात्मिक है, उतनी ही सामाजिक भी। मीरा एक आधुनिक नारी की प्रतीक है जो सामाजिक बंधनों, परंपरागत रूढ़ियों को तोड़कर विधवा जीवन की निषेधात्मक मान्यताओं का खंडन करके कृष्ण को अपने आराध्य के रूप में, पति के रूप में चित्रित करती है-

पग घुंघरू बांध मीरा नाची रे।
मैं तो अपने गिरिधर की आप ही हो गई दासी रे।
लोग कहे मीरा भई बावरी, न्यात कहै कुलनाशी रे।[6]

मध्यकालीन काव्य में मीरा को छोड़कर अन्य भक्त, संत कवियों ने नारी की सार्थकता पुरुष वर्चस्ववादी ढांचे में सुरक्षित की है। भक्त कवियों ने नारी सौंदर्य की उदात्तता उसके तीनों रूपों माता, पत्नी, कन्या में की है। ज्ञानमार्गियों के लिए माता परमात्मा स्वरूप है। हिंदी साहित्य में नारी के माया रूप की निंदा तथा पतिव्रता रूप की प्रशंसा दोनों बातें दिखाई देती है। एक ओर संतों ने उसे काम स्वरूपा जानकर उसकी निंदा की है, उसे माया महाठगिनी कहा है। कबीर के अनुसार-

'माया महाठगिनी हम जानि'[7]

अपने वैराग्यपूर्ण वृत्ति से प्रेरित होकर उसे सर्पिणी व भवबंधन का मुख्य कारण भी बताया।

'नारी की झाई परत अंध होत भुजंग
कबिरा तिन की कौन गति नित नारी के संग'।[8]

वहीं दूसरी ओर उसके मातृरूप व पतिव्रता रूप की प्रशंसा भी कही गई है-

'पतिव्रता मैली भली काली कुचित कुरूप
पतिव्रता के रूप पर वारो कोटि सरूप'।[9]

तुलसी जैसे समन्वयात्मक दृष्टिसंपन्न कवि ने उसे माता व जीवन की सच्ची सहधर्मिणी के रूप में चित्रित किया है। तुलसीदास ने नारी के पतिपरायणी रूप के साथ-साथ पतिहितकारिणी रूप का भी वर्णन किया है। समाज में नारी की स्थिति से द्रवित होकर तुलसीदास ने अपने काव्य में लिखा है-

---

[6] मीराबाई की पदावली, पृष्ठ संख्या 39

[7] कबीर ग्रंथावली, पारसनाथ तिवारी, पृष्ठ संख्या 137

[8] oghवही, पृष्ठ संख्या 31

[9] वही, पृष्ठ संख्या 63

कत विधि सृजी जग नारी जग माही।
पराधीन सपनेहु सुख नाहीं'।[10]

भक्ति काल में जहां स्त्री को एक माता, पुत्री, पत्नी के आदर्श रूप में सम्मान मिला, वहीं रीतिकाल का दौर आते ही स्त्री पुनः एक भोग विलास की वस्तु के रूप में देखी जाने लगी। साहित्यकारों के काव्य की विषयवस्तु नायिका भेद, नखशिख वर्णन, श्रृंगार आदि रहे। नायिका भेद में तरह-तरह की भाव-भंगिमाओं के साथ नारी को सशरीर नए-नए रूपों में प्रस्तुत किया जाने लगा। कवियों की रूचि उसके आत्मसौंदर्य की ओर न जाकर उसके बाह्य सौंदर्य में ही रमी। स्त्री के मानवीय पक्ष, संवेदना, अस्तित्व की अवहेलना करके उसे काव्य में एक सजावट की वस्तु के रूप में दिखाया जाने लगा। बिहारी के 713 दोहों में 600 दोहे श्रृंगारिक हैं। केशवदास आभूषण से सजी-धजी नारी को ही काव्य में अधिक महत्व देते हैं-

जदपि सुजाति सुलच्छनी, सुबरन सरस सुवृत।
भूषण बिनु न विराजई, कविता वनिता मित्त।।[11]

समाज में आए बदलाव व राजनीतिक उथल-पुथल के कारण स्त्री की सामाजिक स्थिति बद से बदतर होती चली गई। पुरुष के बढ़ते वर्चस्व, संस्कृति रक्षा की आड़ में नारी के स्वतंत्र अस्तित्व का न केवल पूर्णत: लोप हो गया वरन उसे साज समान बनाकर घर की चहारदीवारी में कैद कर दिया गया। युद्धों में भागीदारी तथा परिवार को सुरक्षा प्रदान करने के कारण पुरुष का गौरव बढ़ता गया। फलत: परिणाम यह हुआ कि सुविधा व सुरक्षा जुटाते रहने के कारण पुरुष वर्चस्ववादी सत्ता को मान्यता दे दी गई और स्त्री मात्र भोग विलास का पर्याय बनकर रह गई। उसका कर्तव्य केवल सज संवरकर पुरुष की इच्छापूर्ति करना तथा बच्चों की माता बनकर उनका पालन पोषण करना रह गया।

प्रसिद्ध कवि व साहित्यकार मैथिलीशरण गुप्त ने अपनी कृति 'यशोधरा' में नारी की हृदयस्पर्शी तथ्य को इस प्रकार चित्रित किया है-

'अबला जीवन हाय तेरी यही कहानी।
आंचल में है दूध और आंखों में पानी।'[12]

आधुनिक कवियों ने समाज में उपेक्षित नारी की स्थिति के प्रति संवेदनशील होकर उसे अपने काव्य में महत्वपूर्ण स्थान दिया है। गौतम बुद्ध की परित्यक्ता पत्नी यशोधरा, साकेत की उर्मिला, चैतन्य महाप्रभु की वियुक्ता पत्नी विष्णुप्रिया को साहित्य में स्थान देकर नारी की मार्मिक अभिव्यक्ति दी गई है। जिस प्रकार साहित्यकारों ने काव्य में नारी को विभिन्न रूपों में चित्रित किया है, उसी प्रकार कथा साहित्य के कथाकारों ने उसे नए नए रूपों में गढ़ा है। आधुनिक काल में चाहे काव्य की नारी हो या कथाकार की नारी, वह तर्क, बुद्धि, आधुनिक विचारों से संपन्न है। नारी पति परायनी होने के साथ-साथ पति हितकारिणी भी है। जैसे, मंदोदरी, उर्मिला, यशोधरा आदि। यशोधरा की नायिका अपनी सखी से अपनी वेदना व्यक्त करते हुए पति के मंगल हित की कामना करती है-

सखी! वे मुझसे कहकर जाते!
कह, क्या वे मुझको अपनी पथबाधा ही पाते? [13]

यह भारतीय संस्कृति की खुशबू है कि स्त्री जिस समाज के साहित्य में गढ़ी जाती है, अपनी अस्मिता, वजूद की तलाश करती रहती है। आधुनिक साहित्यकारों में कुछ महिला कथाकारों ने नारी को एक स्वतंत्र अभिव्यक्ति दी है जो अपने वजूद, अपनी शक्ति, अपने नए विचारों के साथ इस पुरुष वर्चस्ववादी समाज में अपनी स्थिति को हाशिए से निकाल कर मुख्यधारा से जोड़ने को प्रयासरत है।

मैत्रेयी पुष्पा ऐसी ही एक कथाकार है जो नारी को नई ऊर्जा, नई सोच के साथ प्रस्तुत करती है। चाक उपन्यास की उनकी नायिका सारंग कहती है-

'रामराज्य लेकर हम क्या करेंगे। सीता की कथा सुनी तो है। धरती में ही समा जाना है तो यह जद्दोजहद? अपने चलते कोई अन्याय न हो। जान की कीमत देकर इतनी सी बात, संकल्प करके निभाने की इच्छा है बस!'[14]

मैत्रेयी पुष्पा दोनों तरह की नारी को गढ़ती है, आधुनिक बोध वाली नारी और परंपरागत मूल्य की नारी, परंतु बढ़ती है आधुनिक बोध की नारी।

'सारंग मेरी रजा पूछने वाली कौन था री? दूसरों के अहंकार, उनके फरमान ही हमारे हाथों की लकीरें बन गए।' [15]

उपन्यास में बड़ी बहू के ये संवाद परंपरागत सोच को प्रकट करते हैं। मैत्रेयी जी के उपन्यास की नायिका आधुनिक विचारों वाली नारी है जो प्रश्न करना जानती है, तर्क करती है-

'विधवा सिर्फ विधवा होती है, औरत नहीं रहती फिर।' [16]

निष्कर्ष:

अपने मूल्यों, अस्मिता की तलाश में आधुनिक नारी पुरुष वर्चस्ववादी समाज से लड़ती है, अपने अधिकारों व अपनी मुक्ति के लिए संघर्ष करती है।

---

[10] बालकांड, रामचरित् मानस, तुलसीदास, पृष्ठ संख्या 101/5

[11] केशवदास, संपादक सुधाकर पांडे, नागरी प्रचारिणी सभा, पृष्ठ संख्या 112

[12] यशोधरा, मैथिलीशरण गुप्त, पृष्ठ संख्या 33

[13] यशोधरा, मैथिलीशरण गुप्त, पृष्ठ संख्या 40

[14] चाक, मैत्रेयी पुष्पा, पृष्ठ संख्या 43

[15] वही, पृष्ठ संख्या 57

[16] वही, पृष्ठ संख्या 78

स्त्री-पुरुष के इस गैरबराबरी समाज में अपनी आवाज बुलंद करती है। मैथिलीशरण गुप्त की ये पंक्तियां उसकी इसी बात को सत्य करते दिखाई देती है-

'नारी पर नर का कितना अत्याचार है।
लगता है विद्रोह मात्र ही अब उसका प्रतिकार है।' [17]

समग्रत: हमने भारतीय संस्कृति की अविरल धारा में नारी की अलग-अलग जीवन यात्रा, अलग-अलग सोपानों का दृष्टिगत अध्ययन करने का प्रयास किया। चाहे वह नारी वैदिक काल की हो, उपनिषद काल की हो या मध्यकाल की हो, कहीं न कहीं मुख्यधारा की तलाश में अनवरत गतिशील है। यह भारतीय संस्कृति का सौंदर्य है जहां नारी मुख्यधारा में न होते हुए भी त्याग, क्षमा, धैर्य, बलिदान की प्रतिमूर्ति बनती है, मगर समसामयिक रचनाकार इन मूल्यों को छलावा के रूप में देखते हैं। कुल मिलाकर हम कह सकते हैं कि 'नजाकत बदली, नजरिया बदला' वाली बात ही यहां चरितार्थ होती है।

संदर्भ ग्रंथ सूची:

[1] मनुस्मृति,
[2] बृहदारण्यक उपनिषद
[3] विद्यापति पदावली
[4] पद्मावत, जायसी, संपादक माता प्रसाद गुप्त,
[5] मीराबाई की पदावली,
[6] कबीर ग्रंथावली, पारसनाथ तिवारी,
[7] बालकांड, रामचरित् मानस, तुलसीदास,
[8] केशवदास, संपादक सुधाकर पांडे, नागरी प्रचारिणी सभा,
[9] यशोधरा, मैथिलीशरण गुप्त।
[10] चाक, मैत्रेयी पुष्पा,

[17] यशोधरा, मैथिलीशरण गुप्त, पृष्ठ संख्या 55